रत्न कणिकायें

जीव द्रव्य की दो दशा, संसारी अरु सिद्ध,
पंच विकल्प अजीवके, अक्षय अनादि असिद्ध।
गर्भित पुद्गल पिण्ड में, अलख अमूर्ति देव,
फिरै सहज भव चक्र में, यदि अनादि की टेव।
पुद्गल की संगति करे, पुद्गल में ही प्रीत,
पुद्गल को आपा गिने, यही भ्रम की रीत।
जो जो पुद्गल की दशा, सो निज माने हंस,
यही भ्रम विभाव को, बढे कर्म को वंश।
कम्प रोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य,
ज्ञान रूप है आतमा, दोऊ रोग से शून्य।
मूरख मिथ्यादृष्टि जो, निरखी जग में हौंस,
डर ही जीव सब पाप से, करे पुण्य में हौंस।
दोनों रोग समान हैं, मूढ न जाने रीत,
कम्प रोग से भय करे, अकर रोग में प्रीत।
जाके चित्त जैसी दशा, ताकि तैसी दृष्टि,
पण्डितभव खंडित करें, मूढ बढावे सृष्टि।

अकर=मृगो

श्री परमात्मने नमः　　　　श्री भगवदात्मने नमः

॥ श्री परमपारिणामिकभावाय नमः ॥

★ निमित्त ★

लेखक व प्रकाशकः—

ब्रह्मचारी मूलशङ्कर देशाई

जैन मन्दिर, गया (विहार)

तथा

चाकसू का चौक, जयपुर (राजस्थान)

प्रथमावृत्ति २००० | मुद्रक— श्री वीर प्रेस, जयपुर | मूल्य दो आना

दीपावली वीर संवत २४८२ विक्रम संवत् २०१२

सोमवार तारीख १४ नवम्बर सन् १९५५

★ दो शब्द ★

वर्त्तमान में निमित्त का प्रश्न बहुत उठ रहा है । कोई कहता है "निमित्त कुछ करता नहीं", कोई कहता है "निमित्त सब कुछ करता है," परन्तु निमित्त का यथार्थ ज्ञान किये बिना कर्तृत्व बुद्धि मिटती नहीं । जब तक कर्तृत्व बुद्धि मिटे नहीं तब तक मोक्ष मार्ग के सन्मुख जीव कभी आ सकता नहीं है । कर्म और आत्मा का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है । कर्म का उदय निमित्त है और तद्रूप आत्मा की अवस्था नैमित्तिक है आत्मा का रागादिक भाव निमित्त है और कार्माण वर्गणा का कर्मरूप अवस्था होना नैमित्तिक है । आत्माके विकार में यदि कोई निमित्त है तो एक समय का कर्म-का उदय मात्र ही निमित्त है । वह निमित्त बलवान है । आत्मा की हीनता बिना कर्म का उदय निमित्त रूप कभी नहीं आ सकता । देव गुरू शास्त्रादि लोक के सब पदार्थ नोकर्म हैं । नोकर्म निमित्त कभी नहीं बन सकता है । जैसे हवा ध्वजा के लिए निमित्त है उसी प्रकार कर्म का उदय आत्मा के लिए निमित्त है । जैसे जल मछली के लिए चलने में निमित्त है उसी प्रकार संसार के सभी नोकर्म आत्मा के लिए निमित्त हैं । हवा बलवान बनकर ध्वजा को गतिशील बनाता है. परन्तु जल मछली को बलवान बनकर चलाता नहीं है. तो भी निमित्त का शब्द का व्यवहार दोनों में किया जाता है । यथार्थ में दोनों निमित्त नहीं है, निमित्त एक ही है ऐसा ज्ञान करने से जीव अपने कल्याण के पथ पर आ सकता है ।

इस हेतु से यह पुस्तक प्रकाशित कराई जाती है और पूर्ण आशा है कि जिज्ञासु इससे लाभ उठावेंगे ।

ब्र० मूलशङ्कर देसाई

श्री परमात्मने नमः

श्री भगवदात्मने नमः

श्री परमपारिणामिकभावाय नमः

निमित्त

निमित्त-नैमित्तिक जाने विना, मिटे न कर्तृत्व भाव।
तातें ताको जानकर, करो मोक्ष उपाव!

थोड़े ही वर्षों से निमित्त एवं क्रमबद्ध पर्याय का प्रश्न खड़ा हुआ है। यह प्रश्न उतना जटिल नहीं है कि बुद्धि पूर्वक विचार करने से हल हो न सके, किन्तु 'अपनी बात रह जावे' इस अभिप्राय से यह चर्चा प्रधानपने चल रही है। जब तक जानने के लिये यथार्थ पुरुषार्थ न किया जावे, तबतक इसका विकल्प मिटना असंभव है। सोनगढ से जो प्रतिपादन होता है उस पर उसके ही अनुयायी पूर्ण तौर से निश्चय नहीं कर सकते

हैं। श्री कानजी स्वामी नोकर्म को ही निमित्त मानते हैं, परन्तु यथार्थ में वह निमित्त नहीं है। सचमुच में निमित्त एक समय का द्रव्य कर्म का उदय ही है। नो-कर्म को निमित्त मानने से कानजी स्वामी की ऐसी धारणा थी कि "कार्य हुए बाद ही निमित्त का आरोप दिया जाता है" जिस कारण निमित्त कुछ कार्य करता ही नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करने लगे। यह गलती आज से आठ-नौ वर्ष पूर्व जब श्री कानजी स्वामी सभा में पंचा-स्तिकाय ग्रंथ पर प्रवचन देते थे, तब ही उनके दृष्टि में आ गई थी। पंचास्तिकाय ग्रंथ की गाथा १३२, १३५, १३८ में लिखा है कि प्रथम निमित्त में अवस्था होती है तद्पश्चात् नैमित्तिक की अवस्था होती है। उस गाथा की टीका में "उर्ध्वम्" शब्द है जिसका अर्थ श्री कानजी स्वामी 'पीछे होता है' ऐसा मानते थे। परन्तु जब उनके ही पंडित श्रीमान् हिम्मतलाल भाई ने कहा कि 'उर्ध्व' का अर्थ प्रथम होता है, पीछे नहीं होता है अर्थात् निमित्त में प्रथम अवस्था होती है, बाद में ही नैमित्तिक में होती है, तब से ही अपनी गलती अपने ज्ञान में आ गई थी। किन्तु दुःख की बात है कि मोक्षमार्ग में भी सांप-छछुन्दर की-सी दशा हो रही है।

पंचास्तिकाय ग्रंथ की गुजराती में टीका आज से

दो-ढाई वर्ष पहले शुरू हो चुकी थी। परन्तु अभी तक पूरी नहीं हुई। मेरी दृढ़ श्रद्धा है कि १३२, १३५, १३६ गाथाएँ सोनगढ़ के अभिप्राय से विपरीत की हैं जिस कारण से उनने उसकी टीका करना छोड़ दिया होगा। यदि अपनी मान्यता के अनुकूल उसकी टीका करते तो जैसी नौबत नियमसार ग्रंथ की गाथा ५२ की गलत टीका करने में बजी थी, वैसे ही इसकी बजेगी। इसी मान्यता के कारण टीका होने में देरी हो रही है।

हमको जानना चाहिए कि कौनसा अनुयोग निमित्त नैमित्तिक संबंध स्वीकार करता है, और कौनसा अनुयोग स्वीकार नहीं करता है।

प्रश्न—निमित्त-नैमित्तिक संबंध कौनसा अनुयोग स्वीकार करता है?

उत्तर—करणानुयोग तथा चरणानुयोग निमित्त-नैमित्तिक संबंध स्वीकार करता है। द्रव्यानुयोग निमित्त नैमित्तिक संबंध स्वीकार नहीं करता है। इसकी अपेक्षा से ही जीव का पांच भाव माना गया है।

प्रश्न—जीव के पांच भाव कौन से हैं?

उत्तर—(१) औदयिकभाव, (२) क्षयोपशमभाव (३) उपशम भाव (४) क्षायिक भाव और (५) पारिणामिक भाव।

प्रश्न—कौनसा अनुयोग किस भाव को मानता है ?

उत्तर—औदयिकभाव, क्षयोपशमभाव, उपशमभाव और क्षायिकभाव को करणानुयोग मानता है और पारिणामिकभाव को मात्र द्रव्यानुयोग मानता है।

प्रश्न—औदयिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म के उदय में आत्मा में जो भाव होवे उस भाव का नाम औदयिक भाव है। औदयिकभाव विकारी भाव का नाम है।

प्रश्न—क्षयोपशम भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्मके उदय अनुदय में जो भाव होता है उस भाव का नाम क्षयोपशम भाव है जिसे मिश्र भाव भी कहा जाता है। जितने अंश में उदय है उतने अंश में विकार है, और जितने अंश में अनुदय है उतने अंश में स्वभाव भाव है।

प्रश्न—उपशम भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म के उपशम में जो भाव होता है उस भाव का नाम उपशमभाव है, उपशमभाव का नाम धर्मभाव है। परन्तु इस भाव से आत्मा गिर जाता है।

प्रश्न—क्षायिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म के क्षय होने से आत्मा में जो भाव

होता है, उस भाव का नाम क्षायिक भाव है। इस भाव से आत्मा कभी गिरता नहीं है। इस भाव का नाम धर्मभाव है।

प्रश्न—पारिणामिक भाव किसे कहते हैं?

उत्तर—कर्म का सद्भाव अभाव कारण न पडे परन्तु आत्मा स्वयं भाव करे उस भाव का नाम पारिणामिक भाव है।

प्रश्न—आत्मा में विकारी भाव कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर—दो प्रकार के होते हैं।

(१) औदयिक भाव रूप विकार।

(२) उदीरणाभाव रूप विकार।

प्रश्न—औदयिक भाव में किस प्रकार विकार होता है?

उत्तर—जितनी डिग्री में घाति कर्म का उदय होता है, उतनी ही डिग्री में आत्मा के गुण का नियम से घात होता है। कर्म का उदय कारण है और तद्रूप आत्मा के गुण की अवस्था का होना कार्य है।

प्रश्न—उदीरणा भाव किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म सत्ता में है, जिसका उदय काल अभी आया नहीं है, ऐसे कर्मको जिस भाव से उदयावली

में लाया जाता है उस भाव का नाम उदीरणा भाव है। उदीरणा भाव में आत्मा के परिणाम कारण हैं और कर्म का उदयावली में आना सो कार्य है।

प्रश्न---औदयिक भाव और उदीरणाभाव में किसकी प्रधानता है ?

उत्तर---औदयिक भाव में कर्म की प्रधानता है और उदीरणाभाव में आत्मा की प्रधानता है।

प्रश्न---औदयिक तथा उदीरणाभाव में विशेष क्या अन्तर है ?

उत्तर---औदयिक भाव समय समय में होता है और वह भाव ज्ञान की उपयोग रूप अवस्था तथा लब्धिरूप अवस्था दोनों में होती है। जब उदीरणाभाव असंख्यात समय में होता है और वह भाव ज्ञानकी उपयोग रूप अवस्था में ही होता है, परन्तु लब्धिरूप अवस्था में कभी नहीं होता है।

प्रश्न---क्या औदयिक भाव तथा उदीरणाभाव दोनों साथ में रहते हैं ?

उत्तर---जहां औदयिक भाव है वहां उदीरणाभाव होवे अथवा न भी होवे परन्तु जहां उदीरणा भाव है वहां औदयिक भाव नियम से है। जैसे विग्रहगति में, अपर्याप्त

अवस्था में, मूर्च्छित अवस्था में तथा निद्रा अवस्था में उदीरणाभाव नहीं है परन्तु औदयिक भाव अवश्य है।

प्रश्न—निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जनकजन्य भाव का नाम निमित्त-नैमित्तिक संबंध है अर्थात् निमित्त जनक है और नैमित्तिक जन्य है। निमित्त के अनुकूल जो अवस्था धारण करे वह नैमित्तिक है।

प्रश्न—जीव का निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध किसके साथ में है ?

उत्तर—द्रव्यकर्म के साथ में जीव का निमित्त नैमित्तिक संबंध है।

प्रश्न—आत्मा तथा द्रव्यकर्म में निमित्त-नैमित्तिक कौन है ?

उत्तर—दोनों ही एक समय में निमित्त भी है और नैमित्तिक भी है। कर्म का उदय निमित्त है, और तद्रूप आत्मा का भाव होना नैमित्तिक है। वही आत्मा का भाव निमित्त है और कार्माण वर्गणा का कर्म रूप अवस्था होना नैमित्तिक है। ये दोनों भाव एक ही समय में होते हैं, तो भी कारण कार्य भेद अलग है।

शंका—औदयिक भाव में निमित्त नैमित्तिक संबंध कैसे होता है, दृष्टान्त देकर समझाइये।

समाधान--निमित्त नैमित्तिक संबंध में दोनों में ही अर्थात् निमित्त तथा नैमित्तिक में समान अवस्था होती है जैसे—

(१) जितने अंश में ज्ञानावरण कर्म का आवरण होगा उतने ही अंश में जीव का ज्ञान नियम से ढका हुआ होगा। ज्ञानावरण कर्म का आवरण निमित्त है और अनुकूल ज्ञान का होना ही नैमित्तिक है।

(२) जितने अंश में मोहनीय कर्म का उदय होगा उतने ही अंश में आत्मा का चारित्र गुण नियम से विकारी होगा। मोहनीय कर्म निमित्त है और तद्रूप चारित्र गुण की विकारी अवस्था नैमित्तिक है।

(३) गतिनामा नाम कर्म का उदय होगा उसके अनुकूल आत्मा को उस गतिरूप अवस्था धारण करनी ही पडेगी। गतिनामा नामकर्म निमित्त है और तद्रूप आत्मा का उस गति रूप होना नैमित्तिक है।

(४) जितने अंश में रागादिक भाव आत्मा में होगा उतने ही अंशमें कार्माण वर्गणा को कर्मरूप अवस्था धारण करना ही पडेगा। आत्मा का रागादिक निमित्त है और कार्माण वर्गणा का तद्रूप कर्मरूप अवस्था होना नैमित्तिक है।

(५) जितने अंश में आत्मा का प्रदेश हलन चलन

करेगा उतने ही अंश में शरीर का परमाणु हलन चलन करेगा। आत्मा के प्रदेश का हलन चलन करना निमित्त और तद्रूप शरीर के परमाणु का हलन चलन होना नैमित्तिक है।

(६) जितने अंश में शरीर के परमाणु लकवाग्रस्त होने के कारण हलन चलन रहित होगा उतने ही अंशमें आत्मा का प्रदेश हलन चलन नहीं कर सकता। शरीर का परमाणु निमित्त हैं और आत्मा का प्रदेश नैमित्तिक है।

प्रश्न—निमित्त के अनुकूल नैमित्तिक की अवस्था होनी ही चाहिए, क्या ऐसा कोई आगम वाक्य है ?

उत्तर—बहुत है। देखिये समयसार पुण्य पाप अधिकार गाथा नं० १६१, १६२, १६३।

सम्मत्तपडिणिवद्धं मिच्छत्तं जिणवरेही परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो॥
णाणस्य पडिणिवद्धं अण्णाणं जिणवरेहीपरिकहियं
तस्योदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्यो॥
चारित्तपडिणिवद्धं कसायं जिनवरेही परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो॥

अर्थ--सम्यक्त्व का रोकने वाला मिथ्यात्व नामा कर्म है, ऐसा जिनवर देवने कहा है। उस मिथ्यात्व नामा कर्म के उदय से यह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है, ऐसा जानना चाहिए। आत्मा के ज्ञान को रोकनेवाला ज्ञानावरणी नामा कर्म है, ऐसा जिनवरने कहा है। उस ज्ञानावरण कर्म के उदय से यह जीव अज्ञानी होजाता है ऐसा जानना चाहिये। आत्मा के चारित्र का प्रतिबन्धक मोहनीय नामा कर्म है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उस मोहनीय नामा कर्म के उदय से यह जीव अचारित्री अर्थात् रागी द्वेषी होजाता है, ऐसा जानना चाहिए। इन तीन गाथाओं में निमित्त-नैमित्तिक संबंध दिखलाया है, कर्म का उदय निमित्त है और तद्रूप आत्मा की अवस्था होना नैमित्तिक है।

और भी समयसार बन्ध-अधिकार गाथा नं० २७८ २७९ में लिखा है कि--

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं॥
एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं।
राइज्जदिं अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं॥

अर्थ--जैसे स्फटिक मणि आप स्वच्छ है, वह आप से आप ललाइ आदि रंग रूप नहीं परिणमनती, परन्तु वह स्फटिक मणि दूसरे लाल काले आदि द्रव्यों से ललाई आदि रंग स्वरूप परिणमन जाती है। इसी प्रकार आत्मा आप शुद्ध है, वह स्वयं रागादिक भावों से नहीं परिणमनता, परन्तु अन्य मोहादिक कर्म के निमित्त से रागादिक रूप परिणमन जाता है। यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध दिखलाया है। लाल आदि रंग रूप परवस्तु निमित्त है और तद्रूप स्फटिक मणि की अवस्था होना नैमित्तिक है। इसी प्रकार मोहनीय कर्म निमित्त है और तद्रूप आत्मा की रागादिक अवस्था होना नैमित्तिक है। इस गाथा की टीका में कलश नं १७५ में आचार्य अमृतचन्द्र सूरी लिखते हैं कि "आत्मा अपने रागादिक के निमित्त भाव को कभी नहीं प्राप्त होता है, उस आत्मा में रागादिक होनेका निमित्त पर द्रव्य का सम्बन्ध ही है। यहां सूर्यकान्त मणि का दृष्टान्त दिया है कि जैसे सूर्यकान्तमणि आप ही तो अग्निरूप नहीं परिणमनती परन्तु उसमें सूर्य की किरण अग्निरूप होने में निमित्त है, वैसे जानना। यह वस्तु का स्वभाव उदय को प्राप्त है, किसी का किया हुआ नहीं है अर्थात् वस्तु स्वभाव ही ऐसा है। इसमें कर्म का उदय निमित्त है और आत्मा में तद्रूप अवस्था

होना नैमित्तिक है। उसी प्रकार सूर्य का किरण निमित्त है और तद्रूप सूर्यकान्तमणि का होना नैमित्तिक है।

समयसार कर्त्ता कर्म अधिकार गाथा नं० ८०. में लिखा है कि:—

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तंपुग्गला परिणमंति.।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तदेहजीवो वि परिणमई ॥

अर्थ—जीव के रागादिक परिणाम का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्म रूप अवस्था धारण करता है तथा कर्म के उदय का निमित्त पाकर जीव भी तद्रूप अवस्था धारण करता है, यह भी निमित्त नैमित्तिक संबंध दिखलाया है। जीव का रागभाव निमित्त है और तद्रूप कार्माण वर्गणा का कर्म रूप होना नैमित्तिक है। उसी प्रकार मोहादिक कर्म का उदय निमित्त है और तद्रूप जीव की अवस्था होना नैमित्तिक है। ये दोनों अवस्था एक समय में ही होती है जिस कारण एक ही समय में जीव तथा पुद्गल द्रव्य निमित्त भी है और नैमित्तिक भी है। किसको उपादान और निमित्त कहेंगे? समयसार सर्व विशुद्धि अधिकार गाथा नं० ३१२-३१३ में लिखा है कि—

चेया उ पयडीयढ्ढं उप्पज्जइ विणस्सइ ।
पयडीवि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥
एवं बंधो उ दुराहंपि अण्णोण्णप्पच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीय च संसारो तेण जायए ॥

अर्थ--ज्ञान स्वरूपी आत्मा ज्ञानावरणादि कर्म की प्रकृतियों के निमित्त से उत्पन्न होता है तथा विनाश भी होता है और कर्म प्रकृति भी आत्मा के भाव का निमित्त पाकर उत्पन्न होती है, विनाश को प्राप्त होती है । इसी प्रकार आत्मा तथा प्रकृति का दोनों का परस्पर निमित्त से बन्ध होता है तथा उस बन्ध से संसार उत्पन्न होता है। इससे सिद्ध होता है कि कर्म के साथ में आत्मा का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है जो आत्माके भाव के साथ में कार्माण वर्गणा का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है ।

पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा १३२ की टीका में लिखा है कि --

"जीवस्य कर्तुः निश्चयकर्मतापन्नशुभ परिणामो द्रव्यपुण्यस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणी-भूतत्वात्तदाश्रवक्षणादूर्ध्वं भवति भावपुण्यम् ।"

अर्थ--जीव कर्त्ता है, शुभ परिणाम कर्म है, वही

शुभ परिणाम द्रव्य पुण्य का कारण है। पुण्य प्रकृति के योग्य वर्गणा तब ही होती है जब कि शुभ परिणाम का निमित्त मिलता है। इसी कारण प्रथम ही भाव पूर्ण होता है तत्पश्चात् द्रव्य पुण्य होता है। इससे भी सिद्ध होता है कि प्रथम निमित्त में ही अवस्था होती है, तद्पश्चात् नैमित्तिक की निमित्त के अनुकूल ही अवस्था होती है। यद्यपि इसमें समय भेद नहीं है, तथापि कारण कार्य भेद है। निमित्त कारण है और नैमित्तिक अवस्था कार्य है। समयसार गाथा ६८ की टीका में लिखा है कि--

"कारणानुविधायीनि कार्याणीति कृत्वा यवपूर्वक यवा यवा एवेति न्यायेन पुद्गल एव न तु जीवः।"

अर्थ-जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। जैसे जौ से जौ ही पैदा होता है अन्य नहीं होता है इत्यादि।

समयसार कर्त्ता कर्म अधिकार गाथा १३०-१३१ में लिखा है कि--

"यथा खलु पुद्गलस्य स्वयं परिणाम-स्वभावत्वे सत्यपि कारणानुविधायित्वात्कार्याणां इति"

अर्थ--निश्चयकर पुद्गल द्रव्य के स्वयं परिणाम स्वभाव होने पर जैसा पुद्गल कारण हो उस स्वरूप कार्य होता है यह प्रसिद्ध है। उसी तरह जीव के स्वयं परिणाम भाव रूप होने पर भी जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। इस न्याय से सिद्ध हुआ कि कारण के अनुकूल कार्य होता है अर्थात् निमित्त के अनुकूल ही नैमित्तिक की अवस्था होती है। उसी प्रकार समयसार की गाथा नं० ३२ की टीका, गाथा नं० ८६ की टीका आदि अनेक जगहों पर निमित्त नैमित्तिक संबन्ध दिखलाया है।

प्रश्न---यदि निमित्त के अनुकूल ही आत्मा का भाव हो तो मोक्ष कैसे हो सकता है ?

उत्तर---औदयिक भाव के साथ में कर्म का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। औदयिक भाव में आत्मा पराधीन ही है परन्तु औदयिक भाव के साथ में एक दूसरा आत्मा में उदीरणा रूप भाव होता है जो भाव बुद्धिपूर्वक ज्ञान की उपयोग रूप अवस्था में ही होता है। उस भाव में आत्मा स्वतन्त्र है अर्थात् उदीरणाभाव में आत्मा पुरुषार्थ कर सकता है। उदीरणा भाव में पुरुषार्थ करने से जो कर्म सत्ता में पडा है उस कर्म में अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण तथा द्रव्य निर्जरा होती है, जिस कारण से सत्तामें पडे हुए कर्म की शक्ति हीन २ होती जाती है। सत्ता के कर्म की

शक्ति हीन होने से उदय भी हीन आता है और उदय के अनुकूल भाव भी हीन होता है और भाव के अनुकूल नवीन कर्मका बंध भी हीन होता है। इसी प्रकार उदीरणा भाव द्वारा कर्म की सत्ता इतनी हीन हो जाती है जिसके उदय में आत्मा का भाव सूक्ष्म रागादिक रूप रह जाता है। सूक्ष्म कर्म के उदय में रागादिक सूक्ष्म जरूर होता है परन्तु उस रागादिक में मोहनीय कर्म का बन्ध करने की शक्ति नहीं है परन्तु अन्य कर्मका बन्ध हो जाता है, जिस कारण से आत्मा वीतराग बनजाता है। इससे सिद्ध हुआ कि औदयिक भाव में आत्मा का पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं है। कर्म का उदय ही आत्मा के पुरुषार्थ की हीनता दिखलाता है। अबुद्धि पूर्वक राग में कर्म का उदय कारण है और तद्रूप आत्मा का भाव कार्य है। बुद्धिपूर्वक राग में तथा उदीरणाभाव में आत्मा का भाव कारण है और सत्ता में से कर्म का उदयावली में आना कार्य है। यह दोनोंमें अन्तर है।

प्रश्न—'कार्य हुए बाद ही निमित्त कहा जाता है' ऐसी अनेक जीवों की धारणा है। वह धारणा यथार्थ है या नहीं?

उत्तर—जिन जीवों की ऐसी धारणा है कि कार्य हुए बाद निमित्त कहा जाता है उन जीवों को औदयिक

भाव का ज्ञान नहीं है जिस कारण से वह अज्ञानी अप्रतिबुद्ध है क्योंकि कार्य हुए बाद निमित्त कहा जाता है ये लक्षण उदीरणा भाव का है।

प्रश्न—उदीरणा भाव में कार्य हुए बाद निमित्त कैसे कहा जाता है?

उत्तर—संसार के सभी पदार्थ ज्ञेय रूप हैं। उस ज्ञेय को नोकर्म कहा जाता है परन्तु आत्मा स्वयं ज्ञेय को ज्ञेय रूप न जानकर उसको अपने रागादिक में निमित्त बना लेता है। इसी कारण रागादिक रूप भाव हुए बाद निमित्त कहा जाता है।

शंका—कैसे निमित्त कहा जाता है, ऐसा दृष्टान्त देकर समझाइये।

समाधान—औदयिक भाव में निमित्त के अनुकूल नैमित्तिक की अवस्था होती है अर्थात् दोनों में समान अवस्था होती है, परन्तु उदीरणाभाव में उपादान में जैसी अवस्था होती है ऐसी अवस्था निमित्त में नहीं होती है। निमित्त नैमित्तिक संबंध में एक ही समय में दोनों निमित्त भी हैं एवं दोनों नैमित्तिक भी हैं, परन्तु उदीरणाभाव में उपादान उपादान ही है और निमित्त निमित्त ही है। यह खाश अन्तर है जैसे—

(१) देवकी मूर्ति देखकर आप भक्ति का राग करते हैं किन्तु मूर्ति राग कराती नहीं है, भक्ति किये बाद इस देव की भक्ति करी, ऐसा कहा जाता है। जैसा राग भक्ति का आप में हुआ ऐसा राग मूर्ति में नहीं हुआ अर्थात् निमित्त में नहीं हुआ।

(२) दो पुरुष बैठे हैं, वहाँ से एक स्त्री सरल भाव से जा रही है। तब एक पुरुष ने उस स्त्री को देखकर अपने में विकार भाव उत्पन्न किया, क्योंकि भाव पदार्थ के आश्रित होता है तो भी पदार्थ भाव कराता नहीं है। विकार भाव हुए बाद वह पुरुष कहेगा कि इस स्त्री को देखकर मुझमें विकार भाव उत्पन्न हुआ। जैसा विकार पुरुष में हुआ वैसा विकार स्त्री रूपी निमित्त में नहीं हुआ। दूसरा पुरुष कहता है कि स्त्री को मैंने देखा है किन्तु उसने विकार कराया नहीं। मेरे लिये वह स्त्री मात्र ज्ञेय रूप है और आपने स्वयं अपराध कर विकार किया है। ऐसा अपराध कर जहाँ जहाँ निमित्त बनाया जाता है, तब भाव हुए बाद ही निमित्त का आरोप आता है।

(३) एक सरोवर में जल है, वह जल निष्क्रिय निष्कम्प है। उस सरोवर में मछलियां हैं। मछलियां चले तो जल को निमित्त कहा जाता है परन्तु जबरदस्ती जल

मछली को चलाता नहीं है। मछली में जैसे चलने की क्रिया होती है वैसी जल में नहीं होती।

(४) लोक में एक अखण्ड धर्मास्तिकाय नाम का द्रव्य लोक के बराबर है जो स्वयं निष्क्रिय और निष्कम्प है। जीव और पुद्गल यदि गमन करे तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जाता है परन्तु धर्मास्तिकाय जबर्दस्ती चलाता नहीं है। जैसी जीव पुद्गल में गमन की क्रिया हुई वैसी क्रिया धर्मास्तिकाय में नहीं होती।

(५) लोकाकाश में एक एक प्रदेश पर एक एक काल द्रव्य है जो निष्क्रिय और निष्कम्प है। जीव और पुद्गल जैसी अवस्था धारण करे तब काल को निमित्त कहा जाता है परन्तु काल द्रव्य जबर्दस्ती से आपकी अवस्था कराता नहीं है। जैसी जीव पुद्गल में अवस्था होती है वैसी अवस्था काल द्रव्य में नहीं होती। इससे सिद्ध हुआ कि उदीरणा भाव में भाव प्रधान है और भाव के अनुकूल निमित्त पर मात्र आरोप आता है।

प्रश्न—नो कर्म राग कराता नहीं है परन्तु आत्मा स्वयं अपराध करता है ऐसा कोई आगम वा वाक्य है?

उत्तर—आगम का वाक्य है। समयसार बंध अधिकार गाथा २६५ में लिखा है कि—

वत्थु पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं।
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥

अर्थ—जीवों के जो भाव हैं वह वस्तु को अवलम्बन करके होता है तथा वस्तु से बंध नहीं है, भाव करि बंध होता है। यहाँ भाव उदीरणा दिखलाई है।

समयसार कलशा नं० १५१ में भी भाव उदीरणा का कथन किया है "हे ज्ञानी! तुझको कुछ भी कर्म कभी नहीं करना योग्य है तो भी तू कहता है कि पर द्रव्य तो मेरा कदाचित् भी नहीं है और मैं परद्रव्य को भोगता हूँ। तब आचार्य कहते हैं कि बडा खेद है जो तेरा नहीं उसे तू भोगता है? इस तरह से तो तू खोटा खाने वाला है। हे भाई! जो तू कहे कि परद्रव्य के उपभोग से बन्ध नहीं होता है ऐसा सिद्धान्त में कहा है, इसलिये भोगता हूँ, उस जीव को क्या तेरे भोगने की इच्छा है? तू ज्ञान रूप हुआ अपने स्वरूप में निवास करे तो बन्ध नहीं है और जो भोगने की इच्छा करेगा तो तू आप अपराधी हुआ। तब अपने अपराध से नियम से बन्ध को प्राप्त होगा।" यह कथन भाव उदीरणा का ही है। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध में अर्थात् औदयिक भाव में कर्म के साथ में आत्मा का एक क्षेत्र में बन्ध-बन्धक सम्बन्ध है,

जब उदीरणाभाव में नोकर्म के साथ में एक क्षेत्र में बंध बन्धक संबन्ध नहीं है, यही अन्तर है।

प्रश्न—ज्ञेय ज्ञायक संबंध में और निमित्त नैमित्तिक संबन्ध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध में ज्ञेय तथा ज्ञायक अलग अलग क्षेत्र में रहते हैं एवं एक क्षेत्र में भी रहे तो भी ज्ञेय में जनाने की शक्ति है और ज्ञायक में जानने की शक्ति है। ज्ञेय कारण है और तद्रूप ज्ञान की पर्याय कार्य है। तो भी दोनों में बन्ध बन्धक संबन्ध नहीं है। जब कि निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध में दोनों एक क्षेत्र में ही रहते हैं, अलग २ क्षेत्र में नहीं रहते। दोनों की विकारी अवस्था है एवं दोनों में परस्पर बन्ध बन्धक सम्बन्ध है। यह दोनों में अन्तर है।

प्रश्न—औदयिक भाव तथा उदीरणा भाव में क्या अन्तर है ?

उत्तर—औदयिक भाव समय २ में होता है जिस कारण से समय २ में बन्ध पडता है एवं औदयिक भाव ज्ञान की लब्धि रूप अवस्था में तथा उपयोग रूप अवस्था में होता है परन्तु लब्धिरूप अवस्था में कभी नहीं होता है। उदीरणाभाव असंख्यात समय में ही होता है परन्तु मूर्च्छित अवस्था, निद्रा अवस्था, विग्रहगति, अपर्याप्त

अवस्था आदि में होता ही नहीं है। उदीरणाभाव से समय समय में बन्ध नहीं पडता है, परन्तु औदयिक भाव से जो बन्ध पडता है उस बन्ध में उदीरणाभाव द्वारा संक्रमण अपकर्षण, उत्कर्षण एवं द्रव्य निर्जरा होती है। औदयिक भाव में कर्म का उदय कारण है और भाव कार्य है जब कि उदीरणाभाव में भाव कारण है और कर्म का उदयावली में आना कार्य है।

प्रश्न—"उपादान की तैयारी होने से निमित्त हाजिर होता है" यह कहना क्या सम्यक्ज्ञान है ?

उत्तर—नहीं, यह मिथ्याज्ञान है, अज्ञान भाव है। निमित्त भी तो लोक का एक स्वतंत्र द्रव्य है वह हाजिर क्यों होवे ? निमित्त हाजिर होता नहीं है जैसे—

(१) प्यास लगने से कुंआ हाजिर होता नहीं है, बल्कि कुंआ के पास में उपादान को ही जाना पडता है।

(२) श्री कानजी स्वामी का प्रवचन सुनने के लिये हमारा उपादान स्वाध्याय मंदिर में भी गया व प्रवचन सुनने के लिये उपादन तैयार है, इतने में सुना कि स्वामी जी आज प्रवचन नहीं देंगे, निमित्त हाजिर क्यों नहीं हुआ ?

(३) श्री कुन्दकुन्द स्वामी का उपादान श्री सीमंधर स्वामी का दर्शन करने के लिये तैयार हुआ है तो भी

सीमंधर स्वामी भरतक्षेत्र में हाजिर क्यों नहीं हुए, बल्कि श्री कुन्दकुन्द स्वामी को अर्थात् उपादान को विदेह क्षेत्रमें जाना पड़ा।

(४) एक दिन की बात है। श्री कानजी स्वामी को देखने में कुछ बाधा आती थी। तब उनने श्रीमान् रामजी भाई को कहा "आज देखने में कुछ बाधा आती है।" श्रीमान् रामजी भाई ने एक आदमी को आज्ञा करी— "एक तार का फॉर्म लाओ।" तार का फॉर्म आने से श्रीमान् रामजी भाई ने राजकोट डाक्टरों को तार भेजा कि तुरन्त स्पेशल मोटर में सोनगढ आजावो और आदमी को शीघ्रातिशीघ्र उस तार को भेजने को कहा। वहां एक भद्र परिणामी आदमी बैठा था। उसने श्रीमान् रामजी भाई को कहा "भाई साहब! बिना प्रयोजन तार का खर्च क्यों करते हो? अपना तो सिद्धान्त है कि उपादान की तैयारी होने से निमित्त हाजिर होता है। तब श्रीमान् रामजी भाई ने कहा, "भाई श्री! हाथी के दो दांत होते हैं, दिखाने के और, और चबाने के और।" यह जवाब सुनकर वह भद्र परिणामी भाई दङ्ग हो गये और कहने लगे "आप क्या कहते हैं?" इससे सिद्ध होता है कि उपादान की तैयारी होने से निमित्त कदापि हाजिर नहीं होता।

प्रश्न—निमित्त दूर रहता है अथवा एक ही क्षेत्र में रहता है ?

उत्तर—निमित्त दूर नहीं रहता, एक क्षेत्र में ही रहता है, जैसे—

(१) एक पिण्ड हल्दी का है उसकी वर्त्तमान पर्याय पीली है, दूसरे जगह पर एक पिण्ड चूने का है जिसकी वर्त्तमान पर्याय सफेद है। हल्दी तथा चूने में लाल पर्याय प्रगट करने की शक्ति है। अब कहो कि निमित्त कितना दूर है जब दोनों में लाल पर्याय प्रगट होवे ? तब आपको कहना पडेगा कि दोनों कि एकमेक अवस्था हो जाने से लाल पर्याय दोनों में प्रगट हो जावेगी। दोनों में निमित्त उपादान किसे कहोगे ?

(२) एक बाल्टी में जल है जिसकी वर्त्तमान पर्याय शीतल है, दूसरी एक बाल्टी में चूना है, जिसकी वर्त्तमान पर्याय शीतल ही है। जल तथा चूना दोनों में उष्ण पर्याय प्रगट करने की शक्ति है। निमित्त कितना दूर है कि दोनों उष्ण हो जावे, तो कहना पडेगा कि चूना को जलमें डालदो अथवा जल को चूना में डालदो दोनों की उष्ण अवस्था प्रगट हो जावेगी । इससे सिद्ध होता है कि निमित्त एक क्षेत्र में ही रहता है और दोनों परस्पर निमित्त भी है और नैमित्तिक भी हैं।

प्रश्न—आत्मा के लिए एक क्षेत्र में कौनसा निमित्त है ?

उत्तर—ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों का एक समय का उदय आत्मा के विकार के लिये निमित्त है और निमित्त जब तक रहेगा तब तक मोक्ष नहीं हो सकता। सत्ता में जो कर्म है वह यथार्थ में निमित्त नहीं है परन्तु एक समय का उदय मात्र निमित्त है। इस कर्म के साथ में आत्मा एक क्षेत्र में रहते हुए भी बन्ध बन्धक सम्बन्ध है परन्तु आकाशादि द्रव्य का एक क्षेत्र में रहते हुए भी आत्मा के साथ में बन्ध बन्धक सम्बन्ध नहीं होने के कारण यह निमित्त भी नहीं है। उपादान की तैयारी होने से निमित्त हाजिर होता है यह कहना सर्वथा गलत है परन्तु समय समय के कर्म का उदय यथार्थ में निमित्त है और उसके आधीन तद्रूप आत्मा की अवस्था होना नैमित्तिक है।

प्रश्न—क्षयोपशम भाव में शुद्ध तथा अशुद्ध परिणाम एक ही साथ में कैसे रहते होंगे ? एक समय में तो एक ही अवस्था होनी चाहिए, परन्तु मिश्र अवस्था होती है ऐसा कोई आगम वाक्य है ?

उत्तर—समयसार ग्रन्थ के पुण्य-पाप अधिकार में कलश नं० ११० में लिखा है कि—

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा।
कर्मज्ञानसमुच्चयोपि विहितस्तावन्नकाचित्क्षतिः।
किंत्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बंधाय
तन्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः।

अर्थ---जब तक कर्म का उदय है और ज्ञानकी सम्यक्विरति नहीं है तब तक कर्म और ज्ञान दोनों का इकट्ठापन भी कहा गया है तब तक इसमें कुछ हानि भी नहीं है। यहां पर यह विशेपता है कि इस आत्मा में कर्म के उदय की जबर्दस्ती से आत्मा के वश के बिना कर्मका उदय होता है वह तो बन्ध के लिये ही है और मोक्ष के लिये तो एक परमज्ञान ही है, वह ज्ञान कर्म से आप ही रहित है। कर्म के करने में अपने स्वामीपने रूप कर्त्ता पने का भाव नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि क्षयोपशम भाव मिश्र रूप ही है।

प्रश्न---क्रमबद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर---जिस काल में जैसी अवस्था होने वाली है ऐसी अवस्था होना, उसे क्रमबद्ध पर्याय कहते हैं।

प्रश्न---क्या सभी जीवों को क्रमबद्ध पर्याय ही होतीहै?

उत्तर---सभी संसारी जीवों की क्रमबद्ध पर्याय नहीं होती है, परन्तु अक्रम पर्याय भी होती है। जैसे समय ?

में आयु का निषेक उदय में आना वह क्रमबद्ध है परन्तु उस आयु की उदीरणा कर घात कर देना यह अक्रम है।

प्रश्न—आत्मा में एक ही साथ में दो अवस्था कैसे होती होगी ?

उत्तर—आत्मा में विकारी अवस्था दो प्रकार की होती है, (१) अबुद्धि पूर्वक, (२) बुद्धिपूर्वक, जिसे शास्त्रीय भाषा में औदयिक भाव तथा उदीरणा भाव कहते हैं। औदयिक भाव कर्म के उदय के अनुकूल ही होते हैं और कर्म का उदय होना कालद्रव्य के आधीन है, जिस कारण औदयिक भाव क्रमबद्ध ही होता है। उदीरणाभाव में भाव के अनुकूल सत्ता में पडे हुए कर्म उदयावली में आते हैं परन्तु काल के आधीन नहीं हैं बल्कि आत्मा के पुरुषार्थ के आधीन हैं। जिस कारण आत्मा जो भाव करे सो हो सकता है इस कारण उदीरणा-भाव अक्रम है। औदयिक भाव के साथ में उदीरणा भाव हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है किन्तु उदीरणाभाव जहाँ है वहां औदयिक भाव नियम से है। औदयिक भाव में समय समय में बन्ध पडता है परन्तु उदीरणा भाव में समय समय में बन्ध पडता नहीं है। परन्तु जिस औदयिक भाव से समय समय में बन्ध पडता है उस भाव में उदीरणाभाव द्वारा अपकर्षण, उत्कर्षण,

संक्रमण आदि होता है। यदि उदीरणा भाव न होवे तो अपकर्षण आदि कुछ नहीं होता है।

प्रश्न—क्रमशः ही पर्याय होती है ऐसा सोनगढ से प्रतिपादन रूप शास्त्र निकाला है, क्या यह सत्य है ?

उत्तर—यह शास्त्र सोनगढ ने किस अभिप्राय से निकाला है ? शास्त्र प्रकाशित करने में तीन अभिप्राय होता है। (१) इस शास्त्र द्वारा अनेक जीव लाभ उठा सकते हैं। (२) इस शास्त्रद्वारा कोई जीव लाभ उठा नहीं सकता। (३) इस शास्त्रके द्वारा कोई जीवको लाभ या हानि कुछ नहीं हो सकता। अब सोचिये ! इस शास्त्र को किस अभिप्राय से प्रकाशित किया गया है ? तब कहना होगा कि बहुत जीव लाभ उठा सकते हैं। इससे स्वयं सिद्ध हुआ कि इस शास्त्र के पढने से बहुत जीवों की पर्याय सुधर सकती है और न पढने से सुधर नहीं सकती। तब पर्याय क्रमबद्ध कहाँ रही ?

प्रश्न—एक साथ जीव में एक भाव होगा या विशेष ?

उत्तर—एक जीव में एक साथ में पांच भाव हो सकते हैं। (१) औदयिक भाव, (२) क्षयोपशमभाव (३) उपशम भाव (४) क्षायिक भाव, (५) पारणामिकभाव। एक भावमें दूसरे भाव का अन्योन्य अभाव है। तो कौनसे भाव की अवस्थाको क्रमबद्ध पर्याय कहेंगे, यह

शान्ति से विचारना चाहिए। जो महाशय क्रमबद्ध ही पर्याय कहते हैं उनको शान्ति से पूछिये कि आप में पांच भाव कैसे होते हैं। औदयिक तथा उदीरणा भाव कैसे हो रहा है। फिर उन्हीं से पूछिये कि पाँच भावों में से कौनसा भाव, औदयिक तथा उदीरणा में से कौन-सा भाव क्रमबद्ध है ? जिस जीव को भावों का ज्ञान नहीं वह तो स्वयं अप्रतिबुद्ध है, और यदि जीव अपनी पर्याय बदल नहीं सकता तो उसको उपदेश देना व्यर्थ है। उपदेश सुनने से ही जीव अपना कल्याण कर सकेगा, यह अभिप्राय रखकर तो उपदेश दिया जाता है। सत्-समागम करो, कुसंगति छोडो, ये वाच्य-वाचक भाव होने का क्या कारण है ? यदि क्रमबद्ध ही पर्याय होती है तो प्रवचन का रेकार्ड क्या सोचकर किया जाता है। महापुरुष की गैर हाजिरी में रेकार्ड द्वारा अनेक जीव लाभ उठा सकता है यह सोचकर ही तो रेकार्ड की जाती है ? यदि रेकार्ड से जीवों को लाभ होता ही नहीं है तो व्यर्थ के झंझटों में ज्ञानी पुरुष क्यों पडते हैं ? यद्यपि रेकार्ड कराती नहीं है तथापि रेकार्ड द्वारा अनेक जीव लाभ उठाकर अपनी क्रमबद्ध पर्याय का संक्रमणादि कर लेता है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा में क्रमबद्ध तथा अक्रम पर्याय होती है।

शंका—यदि अक्रम पर्याय होती है तो सर्वज्ञ का ज्ञान मिथ्या हो जाता है।

समाधान—सर्वज्ञ का स्वरूप का ज्ञान नहीं है इसी कारण आपको सर्वज्ञ के स्वरूप में शंका होती है। सर्वज्ञ के ज्ञान में पदार्थ झलकते हैं परन्तु भूतकाल तथा भविष्य-काल की पर्याय प्रगट रूप झलकती नहीं है बल्कि शक्ति-रूप झलकती है जिससे वर्त्तमान पर्याय प्रगट सहित पदार्थ भूत-भविष्य की पर्याय की शक्ति सहित झलकता है। इस कारण सर्वज्ञ के ज्ञान में तीन काल की पर्याय झलकती है ऐसा कहा जाता है। जिससे सर्वज्ञ के ज्ञान में बाधा नहीं आती। सर्वज्ञ के ज्ञान में भूत भविष्य का भेद नहीं है। व्यवहार चार प्रकार का है उसमें कनिष्ठ व्यवहार असद्भूत उपचरित व्यवहार है। इस व्यवहार में ज्ञेयके साथ में आत्मा का एक क्षेत्र का सम्बन्ध भी नहीं है। इस असद्भूत उपचरित व्यवहार से कहा जाता है कि भगवान् लोकालोक को देखता है परन्तु निश्चयनय से सर्वज्ञ अपने स्वरूप का ही ज्ञाता दृष्टा है। यदि सर्वज्ञ भूत और भविष्य की व्यक्त रूप पर्याय जानता है तो हमारी प्रथम की तथा शेष की पर्याय जानना चाहिए। हमारी प्रथम पर्याय जाने तो उसके पहले हम क्या थे और शेष की पर्याय जाने तब क्या द्रव्य का नाश हो गया? इससे सिद्ध होता है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में भूत भविष्य का भेद नहीं है। [समाप्त]

तूँ ही वीतराग देव, रागद्वेष टालि देख,
तूं ही तो कहावे सिद्ध, अष्ट कर्म नास से।
तूं ही आचारज है, आचरै जो पंचाचार,
तूं ही उवज्झाय जिन, वाणी के प्रकाशते।
पर को ममत्व त्याग, तूं ही है ऋषिराय,
श्रावक पुनीत व्रत, एकादश भासते।
सम्यक स्वभाव तेरा, शास्त्र तेरी पुनिवानी,
तूं ही भया ज्ञानी निज, रूप में निवासते।
जब ये चिदानन्द निज, रूप को संभार देखे,
कौन हम, कौन कर्म, कहाँ को मिलाप है।
राग द्वेष मोह ने, अनादि ते भ्रमायो हमें,
तातें हम भूल गये, लागे पुंज पाप में।
राग द्वेष मोह तो, हमारे स्वभाव नाहिं,
हम तो अनन्त ज्ञान, भानु सो कथा कहे।
जैसो शिव क्षेत्र बसे, तैसो ब्रह्म यहाँ बसे,
तीनों काल शुद्ध रूप, भया निज आप में।

श्री वीर जयपुर